आलेख

# सम्पत्तिशास्त्रः उपनिवेशवादी दौर में अर्थनीति और स्वदेशी चेतना का उद्घोष

निरंजन सहाय

अनेक किताबें ऐसी हैं, जिनके सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी संसार ने अपनी ऐतिहासिक विस्मृति के घटाटोप से उन्हें ढँक दिया। सम्पत्तिशास्त्र के सिलसिले में यही बात लागू होती है। किसी भाषा की बौद्धिक समृद्धि का आकलन केवल उसकी साहित्यिक कृतियों से ही नहीं होता, बल्कि उसमें विकसित होने वाले ज्ञान-विज्ञान और तर्कशील विचारों के निकष भी उसकी वैधता और व्याप्ति के निर्णायक मानक तय करते हैं। हिन्दी भाषा, जो लंबे समय तक काव्य और भक्ति की परंपरा में अपनी वृत्तियों का संधान करती रही, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में एक नये मोड़ पर पहुँची, जब उसमें आधुनिक विषयों को गद्य के माध्यम से प्रस्तुत करने के गंभीर प्रयास आरंभ हुए। यह अकारण नहीं है कि आधुनिक काल को गद्यकाल कहने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महावीर प्रसाद के पूर्ववर्ती भारतेंदु हरिश्चंद्र के बारे में लिखा, 'उन्होंने 'कालचक्र' नाम की अपनी पुस्तक में नोट किया कि हिन्दी 'नयी चाल में ढली' सन 1873 में।[1] इस ऐतिहासिक परिवर्तन यात्रा की अगली कड़ी के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका अत्यंत निर्णायक रही, और उनकी रचित पुस्तक 'सम्पत्तिशास्त्र' हिन्दी गद्य के उस संक्रमणकालीन हिन्दी विकास की एक ऐतिहासिक कड़ी बनकर उभरी।

दरअसल यह कहना लाजिमी है कि भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा आरंभ की गई 'हिन्दी नए चाल में ढली' वाली भाषा-यात्रा को व्यवस्थित और उद्देश्यपूर्ण दिशा देने का कार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864–1938) ने अपने बेहद हस्तक्षेपधर्मी अंदाज़ में किया। यह कालखण्ड— जो मुख्यतः 1900 से 1920 के बीच सक्रिय रहा— 'द्विवेदी युग' के नाम से हिन्दी साहित्य के इतिहास में चिन्हित है। इस युग का केंद्रीय मंच था सरस्वती पत्रिका, जिसका सम्पादन द्विवेदी जी ने जनवरी 1903 से किया और उसे आधुनिक हिन्दी गद्य, विचारशील लेखन और ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति का प्रभावशाली माध्यम बना दिया। उन्होंने हिन्दी गद्य को न केवल साहित्य के लिए, बल्कि आर्थिक, वैज्ञानिक और नैतिक विमर्शों के लिए भी सक्षम बनाने का प्रयास किया। उनका यह दृष्टिकोण 'सरस्वती' के विविध विषयों पर प्रकाशित लेखों में स्पष्ट दिखाई देता है।

फरवरी 1907 के सरस्वती अंक में द्विवेदी जी का पहला महत्त्वपूर्ण लेख 'संपत्ति शास्त्र' शीर्षक से प्रकाशित हुआ (सरस्वती, 1907)। यह लेख वस्तुतः राजनीतिक अर्थशास्त्र पर आधारित था और एडम स्मिथ तथा जे.एस. मिल जैसे पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों के विचारों का तुलनात्मक और लोकप्रिय प्रस्तुतीकरण था। इस लेख को बाद में पुस्तकाकार रूप में 1908 में प्रकाशित किया गया, जिसे हिन्दी भाषा में आधुनिक आर्थिक विचारों की प्रथम व्यवस्थित प्रस्तुति माना जा सकता है।[2] 'संपत्ति शास्त्र' ने हिन्दी को अर्थशास्त्र जैसे दुरूह विषय में भी सहज संवाद का माध्यम बनाया। हिन्दी गद्य की यह परिवर्तनशीलता केवल भाषिक नवीनीकरण नहीं थी, बल्कि

यह सामाजिक नवजागरण का बेहद उल्लेखनीय आयाम थी। 'सम्पत्तिशास्त्र' का लेखन एक ऐसे दौर में हुआ जब भारत सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर गहरे परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। भारत परतंत्र था, औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियाँ भारतीय जीवन को प्रभावित कर रही थीं, और समाज में एक नए वर्ग — पढ़े-लिखे मध्यवर्ग — का उदय हो रहा था जो अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त कर आधुनिक विचारों से परिचित हो रहा था। परन्तु यह वर्ग अभी तक अपनी भाषा में ज्ञान की अभिव्यक्ति के लिए साधन विहीन था। हिन्दी उस समय साहित्यिक और धार्मिक अभिव्यक्ति की भाषा तो थी, पर आधुनिक विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र जैसे विषयों को व्यक्त करने के लिए उसमें गद्य परंपरा विकसित नहीं हुई थी। ऐसे समय में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सम्पत्तिशास्त्र' जैसी कृति प्रस्तुत की, जिसने हिन्दी को ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनाने की दिशा में एक ठोस पहल की।

'सम्पत्तिशास्त्र' में द्विवेदी जी ने अर्थशास्त्र जैसे शुष्क और जटिल विषय के अनेक पदों को न केवल हिन्दी में अनूदित किया, बल्कि उसे समाजोपयोगी दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया। इसमें सम्पत्ति, श्रम, उत्पादन, उपभोग और वितरण जैसे विषयों को क्रमबद्ध, तर्कसंगत और विश्लेषणात्मक पद्धति से रखा गया है। यह कार्य केवल अनुवाद का नहीं, बल्कि ज्ञान-विज्ञान की भाषायी स्वदेशीकरण का था, जहाँ पाश्चात्य आर्थिक सिद्धांतों को भारतीय समाज और नैतिकता से जोड़कर प्रस्तुत किया गया। यह वैज्ञानिक चेतना की वह मिसाल है, जिसमें तथ्यात्मकता के साथ सामाजिक दृष्टि का भी समावेश होता है। 'सम्पत्तिशास्त्र' उस समय की पहली पुस्तकों में से है, जिसने यह प्रमाणित किया कि हिन्दी केवल भावनात्मक या धार्मिक विषयों की भाषा नहीं, बल्कि वह गंभीर और तर्कशील विमर्श की भी भाषा बन सकती है। इसने हिन्दी गद्य को नये विषयों के लिए सक्षम और उपयुक्त बनाया। इस कृति ने एक नई शैली, नई शब्दावली और नई विषयवस्तु का सूत्रपात किया, जिससे हिन्दी गद्य का परिपक्व विकास सम्भव हुआ। यह प्रयास 'सरस्वती' पत्रिका और अन्य द्विवेदीयुगीन लेखन में और व्यापक रूप से दिखाई देता है। हिंदी गद्य के आधुनिक विकासक्रम में महावीरप्रसाद द्विवेदी का स्थान केवल भाषा-संस्कारक के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान-विन्यास के अग्रदूत के रूप में भी स्थापित होता है। उनके अध्ययन-अनुशीलन के प्रमुख विषयों में अर्थशास्त्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। द्विवेदी जी का इस दिशा में पहला लेख फरवरी 1907 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने राजनीतिक अर्थशास्त्र को 'संपत्ति शास्त्र' नाम देकर उसे भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया। इस वैचारिक अनुशासन का संगठित रूप हमें उनकी 1908 में प्रकाशित कृति 'संपत्तिशास्त्र' में मिलता है।यह पुस्तक हिंदी भाषा में अर्थशास्त्र पर लिखित संभवतः प्रथम व्यवस्थित ग्रंथ है। इसकी रचना हेतु द्विवेदी जी ने केवल अपने मौलिक चिंतन पर निर्भर न रहकर, अंग्रेज़ी में उपलब्ध 9 तथा बांग्ला, उर्दू, मराठी और गुजराती भाषाओं में प्रकाशित कुल 8 पुस्तकों (प्रत्येक भाषा में दो) सहित कुल 17 ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। इतना ही नहीं, उन्होंने माधवराव सप्रे द्वारा लिखित एक अप्रकाशित हिंदी पांडुलिपि का भी संदर्भ लिया, जिसे उन्होंने 'संपत्तिशास्त्र' की भूमिका में आदरपूर्वक स्वीकार किया है। यह तथ्य द्विवेदी जी की सहयोगी बौद्धिक दृष्टि और गवेषणात्मक ईमानदारी का साक्ष्य है। गौरतलब है, सप्रे जी ने अर्थशास्त्र पर एक किताब तैयार तो की थी किंतु उसे लिखने के उपरांत वे संतुष्ट नहीं हुए, फलतः उसे प्रकाशित नहीं कराया। सप्रे जी ने वह हस्तलिखित किताब द्विवेदी जी को भेज दी। संपत्तिशास्त्र की भूमिका में द्विवेदी जी ने स्वीकार किया है कि सप्रे जी की हस्तलिखित पुस्तक से उन्होंने बहुत लाभ उठाया।[3] 'संपत्तिशास्त्र' की भूमिका में भारत की तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक स्थिति का जो विश्लेषण किया गया है, वह औपनिवेशिक शासन के आर्थिक शोषण पर एक मौलिक और प्रतिरोधात्मक टिप्पणी के रूप में सामने आता है।

हिन्दी नवजागरण की बौद्धिक परियोजना का एक प्रमुख लक्ष्य था – औपनिवेशिक ज्ञान-प्रणालियों से संवाद स्थापित करते हुए भारतीय भाषाओं में आधुनिक चेतना की स्थापना। इस क्रम में द्विवेदी जी द्वारा रचित 'सम्पत्तिशास्त्र' एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक कड़ी है, जिसे केवल पश्चिमी अर्थशास्त्र का अनुवाद मानना एक सरलीकरण होगा। यह कृति दरअसल ज्ञान और भाषा के स्वदेशीकरण का प्रयास है, जिसमें द्विवेदी जी आधुनिक आर्थिक विचारों को भारतीय समाज की नैतिकता और सांस्कृतिक आत्मबोध के आलोक में पुनर्परिभाषित करते हैं। भूमिका में वे लिखते हैं—'हिन्दुस्तान सम्पत्तिहीन देश है। यहाँ सम्पत्ति की बहुत कमी है। जिधर आप देखेंगे उधर ही आपको दरिद्र देवता का अभिनय, किसी न किसी रूप में, अवश्य ही देख पड़ेगा। परन्तु इस दुर्दमनीय दारिद्र को देख कर भी कितने आदमी ऐसे हैं जिन को उसका कारण जानने की उत्कण्ठा होती हो? यथेष्ट भोजन-वस्त्र न मिलने से करोड़ो आदमी जो अनेक प्रकार के कष्ट पा रहे हैं उनका दूर किया जाना क्या किसी तरह सम्भव नहीं? गली-कूचों में, सब कहीं, धनाभाव के कारण जो कारुणिक क्रंदन सुनाई पड़ता है उसके बंद करने का क्या कोई इलाज नहीं?[4] यह कथन औपनिवेशिक सत्ता द्वारा संसाधनों की लूट और देश की आर्थिक नींव को कमजोर करने की नीति पर एक स्पष्ट टिप्पणी है। 'संपत्तिशास्त्र' में आगे चलकर वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि 'पाश्चात्य संपत्ति शास्त्र' के कितने ही नियम ऐसे हैं, जिनका अनुसरण करने से पश्चिमी देशों को तो लाभ है, पर हिंदुस्तान की सर्वथा हानि है।[5]

यह आलोचनात्मक दृष्टिकोण द्विवेदी को भारत की स्थानीय आवश्यकताओं और सांस्कृतिक संदर्भों के अनुरूप आर्थिक चिंतन की आवश्यकता का प्रवक्ता बनाता है। आश्चर्य नहीं कि द्विवेदी जी द्वारा 1908 में व्यक्त की गई ये चिंताएँ, आज नवउदारीकरण के तीन दशकों बाद और भी तीव्र और यथार्थ प्रतीत होती हैं। 1991 में शुरू हुए उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) की नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश (FDI) की भूमिका को महत्वपूर्ण बना दिया, किंतु इस प्रक्रिया का लाभ एक सीमित वर्ग तक ही केंद्रित रहा। आंकड़ों के अनुसार, इस कालखंड में देश में डॉलर-अरबपतियों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई, वहीं 1995 से 2010 के मध्य लगभग ढाई लाख किसानों की आत्महत्याएँ आर्थिक असमानता के विस्तार की भयावह तस्वीर पेश करती हैं। खासकर खुदरा व्यवसाय में एफडीआई, विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZ) की स्थापना, और कृषि क्षेत्र का अंतरराष्ट्रीय बाज़ारीकरण जैसी नीतियाँ आम नागरिकों और परंपरागत व्यवसायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं। यह वही वैषम्य है जिसकी आहट द्विवेदी जी ने बहुत पहले सुन ली थी। उनका तर्क था कि जब आर्थिक नीतियाँ देश की परिस्थिति के अनुरूप नहीं होतीं, तब वे विकास नहीं, विघटन का कारण बनती हैं। 'संपत्तिशास्त्र' में द्विवेदी संपत्ति की उत्पत्ति के लिए भूमि, श्रम और पूँजी को आवश्यक घटक मानते हैं। वे इस विचार को स्पष्ट करते हैं कि 'प्राकृतिक कच्ची सामग्री जब तक श्रम से नहीं जुड़ती, तब तक वह संपत्ति के रूप में परिवर्तित नहीं होती।[6] यह कथन आधुनिक स्थायी विकास (sustainable development) की अवधारणाओं के समानांतर विचारशीलता का परिचायक है। वस्तुतः, यह दृष्टिकोण केवल आर्थिक प्रक्रिया का विवरण नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और नैतिक चेतावनी भी है, जो विकास की अवधारणाओं को मानवीय, पर्यावरणीय और सामाजिक संतुलन के साथ जोड़ने का आग्रह करता है।

'संपत्तिशास्त्र' को द्विवेदी जी ने दो खंडों में विभाजित किया—पूर्वार्द्ध (7 उपखंडों में 27 परिच्छेद) और उत्तरार्द्ध (5 उपखंडों में 20 परिच्छेद)। इस संरचना के माध्यम से उन्होंने अर्थशास्त्र के मूल सिद्धांतों, उनके भारतीय अनुप्रयोग और सामाजिक प्रभावों की गहन विवेचना की। यह पुस्तक भारतीय बौद्धिक परंपरा में विकास और न्याय के विमर्श को स्थापित करने की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखी जा सकती है। 'सम्पत्तिशास्त्र' किसी

परंपरागत अर्थशास्त्री द्वारा लिखित शुष्क ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह एक सजग, संवेदनशील और साहित्यबोध सम्पन्न लेखक महावीर प्रसाद द्विवेदी की बौद्धिक तथा राष्ट्रीय प्रतिबद्धता का जीवंत दस्तावेज है। यही कारण है कि इसकी भाषा शुष्क अकादमिकता से मुक्त होकर एक सजीव, प्रवाहमयी और स्फूर्तिदायक रूप में सामने आती है। इसमें तथ्यों की जगह कल्पना नहीं, व्याख्यान की जगह विवेचन है और भावुक आत्माभिव्यक्ति की जगह वस्तुपरक विश्लेषण की ठोस ज़मीन पर खड़ा एक चिंतनशील साहित्यिक प्रयत्न है।

द्विवेदी जी का उद्देश्य केवल अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धांतों की जानकारी देना नहीं है, बल्कि इस पुस्तक के माध्यम से वे आर्थिक अन्याय, उपनिवेशी शोषण और भारतीय समाज की दीन-दशा के मूल में छिपे औपनिवेशिक तंत्र का पर्दाफाश करना चाहते हैं। यह ग्रंथ विशुद्ध रूप से राजनीतिक अर्थशास्त्र की श्रेणी में आता है क्योंकि इसमें आर्थिक विश्लेषण के साथ-साथ राजनीतिक चेतना, औपनिवेशिक शासन की आलोचना और भारतीय जनता के पक्ष में एक प्रखर स्वराज्यकामी स्वर भी प्रकट होता है।

द्विवेदी जी ने सम्पत्तिशास्त्र को भारत की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप गढ़ने की पूरी कोशिश की है। इसके पूर्वार्द्ध में वे स्पष्ट करते हैं कि इस पुस्तक में व्यापक आर्थिक सिद्धांतों का विवेचन प्रमुखता से किया गया है और किसी विशेष देश तक सीमित नहीं रखा गया है, किन्तु इसकी आत्मा भारतीय है। उनका यह दृष्टिकोण इस तथ्य को रेखांकित करता है कि द्विवेदी जी की चिन्ता सिर्फ सैद्धांतिक नहीं, व्यावहारिक और राष्ट्रीय है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद की पृष्ठभूमि में यह ग्रंथ भारत की आर्थिक बदहाली का एक गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत करता है। द्विवेदी जी बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि भारत की गरीबी का मूल कारण उसकी पराधीनता है। आर्थिक संसाधनों पर जनता का अधिकार नहीं है, क्योंकि औपनिवेशिक सत्ता ने उन्हें अपने हाथ में ले रखा है। उन्होंने लिखा है, 'देश की आर्थिक अवस्था हीन है, इसमें कोई सन्देह नहीं... जिन बातों से देश की आर्थिक दशा सुधरती है, उन सबका करना इस देश वालों के हाथ में नहीं...'। इस कथन में पराधीन भारत की पीड़ा, असहायता और आर्थिक दुर्गति की तीव्र अभिव्यक्ति निहित है। इस सिलसिले में आलोचक मैनेजर पाण्डेय का कहना बेहद उल्लेखनीय है, 'द्विवेदी जी के सामने सम्पत्तिशास्त्र लिखने का उद्देश्य स्पष्ट है-देश गरीब है क्योंकि वह पराधीन है, इसलिए देश की गरीबी दूर करने और उसकी दशा सुधारने के लिए देश का स्वाधीन होना जरूरी है, ताकि इस देश की सम्पत्ति पर यहाँ की जनता का अधिकार हो और देश की सम्पत्ति देश में रहे। सखाराम गणेश देउस्कर और माधवराव सप्रे की तरह महावीर प्रसाद द्विवेदी की भी मूल चिन्ता यही है कि देश की उन्नति कैसे हो? इस चिन्ता की शुरुआत 1884 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बलिया में दिये गये प्रसिद्ध व्याख्यान से होती है, जिसमें उन्होंने देश की उन्नति को स्वदेशी की भावना के विकास से जोड़ा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था, 'भाइयो! अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो, जिसमें तुम्हारी भलाई हो। वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।[7] यह उद्घोष भारतीयता के नए क्षितिज की ओर प्रयाण का आह्वान था।

सम्पत्तिशास्त्र के लेखक के मन में सबसे अधिक आक्रोश और बेचैनी भारत के किसानों की तबाही और कृषि की बर्बादी को लेकर है। इसलिए इस पुस्तक में सबसे अधिक चर्चा कृषि और किसान जीवन की समस्याओं की है। आज भी जिसे यहजानना हो कि अंग्रेजों ने किस तरह अपनी कुटिल और निर्गम नीतियों से भारतीय किसानों का शोषण और दमन करते हुए उन्हें अकाल और भुखमरी के रास्ते मौत के मुँह में ढकेला, उसे सम्पत्तिशास्त्र

जरूर पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक में भूमि पर स्वामित्व, जमींदारी, लगान, मालगुजारी आदि की व्यवस्थाओं का विस्तार से विवेचन है। द्विवेदी जी ने अंग्रेजी राज के पहले की भूमि व्यवस्था और लगान की वसूली से ब्रिटिश व्यवस्था की तुलना करते हुए लिखा है कि किसानों की तबाही का सबसे बड़ा कारण अंग्रेजी राज की भूमि व्यवस्था और लगान वसूल करने का ढंग है। उन्होंने कहीं नये सम्पत्तिशास्त्र केवल आर्थिक पाठ नहीं है, यह एक राष्ट्रीय चिन्तन का घोषणापत्र है। यह चिंतन भारतेंदु हरिश्चन्द्र के 1884 के बलिया भाषण से प्रेरणा ग्रहण करता है, जिसमें उन्होंने देश की उन्नति को स्वदेशी की भावना, देशी शिक्षा और अपनी भाषा के माध्यम से आत्मनिर्भरता से जोड़ा था। भारतेंदु का यह आह्वान—'अब तो नींद से चौंको... अपनी भाषा में उन्नति करो'—द्विवेदी जी के सम्पत्तिशास्त्र में एक सशक्त वैचारिक पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित है।

इस ग्रंथ का सबसे सशक्त पक्ष भारत के किसानों की दशा का वर्णन और विश्लेषण है। द्विवेदी जी की कलम उस समय करुणा और आक्रोश से भर उठती है जब वे किसानों की निर्धनता, कर्ज़, लगान, भूमि स्वामित्व और ब्रिटिश लगान व्यवस्था की क्रूरता का वर्णन करते हैं। अंग्रेजी शासन में जमींदारी और मालगुजारी की नीतियों ने किस तरह किसानों को अपनी बुनियादी वस्तुएँ तक बेचने पर विवश किया—यह तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने लिखा है, 'गवर्नमेंट अपनी समझ के अनुसार मनमाना लगान लगाती है और उसे दस-बीस या तीस वर्ष बाद बढ़ाती रहती है... हजारों किसानों को लोटा-थाली बेचकर भीख माँगने की नौबत आती है।'[8] यह वाक्य केवल आर्थिक स्थिति नहीं दर्शाता, यह औपनिवेशिक अन्याय के विरुद्ध किसान चेतना का उद्‌घोष है।

द्विवेदी जी की दृष्टि सीमित नहीं है। वे केवल हिन्दी क्षेत्र के नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष के कृषकों की समस्याओं पर समान रूप से चिन्तित हैं। उन्होंने बंगाल, पंजाब, मद्रास और बम्बई की कृषि व्यवस्थाओं और रैयतवाड़ी बंदोबस्त की विसंगतियों पर भी टिप्पणी की है। वे लिखते हैं, 'मद्रास में मालगुजारी बढ़ती जाती है, काश्तकारों की जमीन नीलाम होती जाती है, गरीबी के कारण थोड़ा भी अकाल पड़ने पर हजारों आदमी मरते चले जाते हैं।'[9] उद्योग-धंधों और शिल्प का विनाश भी उनके विश्लेषण का प्रमुख विषय है। वे बताते हैं कि एक समय था जब भारत के ऊनी, सूती और रेशमी वस्त्र यूरोप में अत्यधिक लोकप्रिय थे, लेकिन ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के बाद उस उद्योग का पतन आरम्भ हो गया। द्विवेदी जी की करुणा कारीगरों और शिल्पकारों के साथ भी है। वे बताते हैं कि कैसे अंग्रेजी नीतियों ने कारीगरों को भूखों मरने को विवश कर दिया। यह भाव इस बात का प्रमाण है कि सम्पत्तिशास्त्र एक संवेदनशील लेखक की मानवीय दृष्टि से लिखी गई पुस्तक है।

हमारे दौर में जब वैश्वीकरण, मुक्त व्यापार और खुले बाज़ार की नीतियों की चर्चा जोरों पर है, सम्पत्तिशास्त्र में 'बन्धनरहित और बन्धनविहित व्यापार' पर एक सम्पूर्ण अध्याय विचार के लिये प्रेरित करता है। द्विवेदी जी लिखते हैं, 'बन्धनरहित व्यापार सब समय, सब देशों के लिए उपकारी नहीं हो सकता। वे इंग्लैंड की व्यापार नीति की आलोचना करते हुए बताते हैं कि उसने भारत के संदर्भ में क्यों बन्धनविहित व्यापार की नीति अपनाई।[10] उनका यह तर्क आज भी प्रासंगिक है कि स्वावलम्बी और नवोद्यमशील राष्ट्रों को अपने उद्योगों की रक्षा के लिए व्यापार पर कुछ प्रतिबंध लगाने चाहिए।

द्विवेदी जी ने मजदूरों के विषय में भी सजीव चिन्तन प्रस्तुत किया है। उन्होंने श्रमिक संगठनों की आवश्यकता, श्रमिकों की भागीदारी और पूंजीपतियों से उनके संघर्ष की बात की है। यद्यपि उन्होंने हड़तालों का समर्थन नहीं किया, परन्तु यह इस बात का संकेत अवश्य है कि लेखक की चिन्ता मजदूर हित के प्रति सजीव है। उनकी अपेक्षाकृत रूढ़ राय के बावजूद उनका श्रमिक विमर्श भारत में उस समय आरंभ हो रहे श्रमिक आन्दोलन की प्रारम्भिक झलक प्रस्तुत करता है।

द्विवेदी जी भारत तक सीमित नहीं रहते, वे इटली जैसे देशों की आर्थिक स्थितियों से भारत की तुलना करते हैं। वे लिखते हैं, 'जैसे हिन्दुस्तान देश है, वैसे ही इटली भी है।' यह तुलना केवल सतही नहीं, गहराई से विचार की गई है। दक्षिण इटली की निर्धनता और उत्तर इटली की अपेक्षाकृत समृद्धि को देखकर वे भारत के आर्थिक विभाजन की ओर संकेत करते हैं।

सम्पत्तिशास्त्र में रंगभेद और वैश्विक असमानता पर भी टिप्पणी है, जो इसे एक वैश्विक चेतना से युक्त पुस्तक बनाती है। भारत के प्रवासी मजदूरों को मारीशस, डमरारा, ट्रांसवाल और कनाडा में जिस अपमान और अमानवीयता का सामना करना पड़ता था, उसका चित्रण करते हुए द्विवेदी जी की भाषा तीखी और भावपूर्ण हो जाती है। वे लिखते हैं कि 'भारत गोरे, अधगोरे, लाल, कम लाल, काले सब तरह के चमड़े के आदमियों की बपौती है... पर भारत के आदमियों को कहीं अन्य देश में जाकर रहने का अधिकार नहीं है।'[11] यह कथन वैश्विक रंगभेद के विरुद्ध गहरे आक्रोश की अभिव्यक्ति है।

इस कृति की भाषा में संवादधर्मिता, जनपक्षधरता और सहज व्याख्यात्मकता है। इसमें जटिल से जटिल आर्थिक सिद्धांतों को आम जनता की रोजमर्रा की भाषा और उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है। यही कारण है कि यह ग्रंथ न केवल एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, बल्कि आज के संदर्भों में भी प्रेरक और प्रासंगिक बना हुआ है। इसमें न केवल उपनिवेशवाद विरोधी चेतना है, बल्कि राष्ट्र निर्माण की आकांक्षा भी है।

1908 में प्रकाशित सम्पत्तिशास्त्र आज भी इसीलिए प्रासंगिक है क्योंकि यह केवल एक अर्थशास्त्रीय ग्रंथ नहीं, बल्कि एक वैचारिक आंदोलन का साहित्यिक उद्घोष है—जिसमें स्वदेशी भावना, आर्थिक आत्मनिर्भरता और जन-सरोकारों के लिए प्रखर आवाज़ है। इसे पढ़ना एक कालखंड विशेष की नहीं, बल्कि भारत की दीर्घ स्वाधीनता यात्रा की वैचारिक भूमिका में प्रवेश करना है।

सम्पत्तिशास्त्र की यात्रा बेहद रोचक और मानीखेज है, इसकी यह सबसे बड़ी विशेषता है इसकी पठनीयता। भारी-भरकम शब्दावली से गुरेज करते हुए या उसे जनोन्मुख बनाते हुए किताब पाठक को सहयात्री बनने के लिए आमंत्रित करती है। बकौल मैनेजर पाण्डेय 'सम्पत्तिशास्त्र' विशेषज्ञों के लिए लिखी गयी पुस्तक नहीं है, इसलिए उसमें सरल बात को जटिल बनाकर कहने की जगह जटिल-से-जटिल बात को सरल-सहज रूप में कहने की कोशिश है। इस पुस्तक में अर्थशास्त्र के जटिल सिद्धान्तों को भी साधारण जनता की रोज-ब-रोज की जिन्दगी के परिचित उदाहरणों से समझाया गया है। सम्पत्तिशास्त्र की विश्लेषण-पद्धति, लेखन शैली और भाषा में एक तरह की संवादधर्मिता है, जो पाठकों को आकर्षित करती है, उन्हें आत्मीय बनाती है। सम्पत्तिशास्त्र 1908 ई. में छपा था लेकिन वह आज भी प्रासंगिक है-केवल ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं, बल्कि अपनी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना, स्वदेशी भावना और जनोन्मुखी दृष्टि की तेजस्विता के लिए आज सम्पत्तिशास्त्र को पढ़ना भारतीय समाज के एक अत्यन्त संघर्षशील और वैचारिक दृष्टि से उर्वर काल के जीवन्त दस्तावेज से गुजरना है।[12] यह किताब हमें भारतबोध को ठीक से समझने की दिशा में किए गए आरम्भिक प्रयासों की न केवल याद दिलाती है, बल्कि हमें भरोसेमंद सहचर बनने के लिए भी तैयार करती है।

**संदर्भ :**


1. शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, पृष्ठ संख्या 251, सम्वत 2050 वि. हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
2. द्विवेदी महावीर प्रसाद, सम्पत्तिशास्त्र, 1908, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
3. चौबे, कृपाशंकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती', हिन्दी समय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा

4. द्विवेदी महावीर प्रसाद, पृष्ठ संख्या1-भूमिका, सम्पत्तिशास्त्र, 1908, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

5. वही, पृष्ठ संख्या 7

6. वही, पृष्ठ संख्या 8

7. पाण्डेय मैनेजर,पृष्ठ संख्या 94,उपनिवेशवाद का शिकार भारत और सम्पत्तिशास्त्र, भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, द्वितीय संस्करण, 2020 वाणी प्रकाशन, दिल्ली

8. वहीं

9. वही, पृष्ठ संख्या 95

10. वहीं

11. वही, पृष्ठ संख्या 97

12. वही

❑❑❑

*सम्पर्क : 9451777960*
*वाराणसी*